National Journal of Multidisciplinary Research and Development
www.newresearchjournal.com
ISSN: 2455-9040
Received: Received: 16-07-2024, Accepted: 15-08-2024, Published: 30-08-2024
Volume 9, Issue 3, 2024, Page No. 37-40

मल्होर गीतों का लोक सांस्कृतिक मूल्यांकन

महासिंह पूनिया
हिन्दी विभागाध्यक्ष, आई.आई.एच.एस., कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र, हरियाणा, भारत

सारांश
हरियाणा सांस्कृतिक दृष्टि से समृद्ध प्रदेश है। यहां की सांस्कृतिक परम्पराएं अतीत के इतिहास एवं परम्पराओं को समेटे हुए है। हरियाणवी लोकजीवन में किसान कुआं खोदते समय, कोल्हू चलाते समय, पानी देते समय जिन गीतों का गायन करते थे, उन्हें मल्होर गीत कहा जाता है। इनमें मनोरंजनात्मकता तथा प्रश्नात्मकता की बहुलता देखने को मिलती है। मल्होर गीत गाने की परंपरा किसानी संस्कृति में अत्यंत प्राचीन है। मल्होर हरियाणवीं संस्कृति का महत्वपूर्ण हिस्सा है जिस जमाने में लोगों के पास मनोरंजन के साधन नहीं होते थे, उस समय व्यक्ति परस्पर मल्होर गीत गाकर अपनी बौद्धिकता, परखरता एवं मनोरंजनात्मकता का साक्षात् परिचय देते थे। मल्होर गीत विशेषकर पुरुषों द्वारा गाए जाते थे।

मूल शब्दः हरियाणा सांस्कृतिक, हरियाणवी लोकजीवन, मल्होर गीत

मल्होर गीतों की परिभाषाएं

''डॉ. महासिंह पूनिया के अनुसार मल्होर गीत वो गीत हैं जो पुरुषों द्वारा गाए जाते हैं। किसानी संस्कृति के लिए यह गीत किसी धरोहर से कम नहीं है। कृषि कार्य करते समय पुरुष अपने मनोरंजन के लिए इन गीतों को गाते रहे हैं।''[1]

ईख पेरते समय कोल्हुओं में मल्हारे गीत गाए जाने की परम्परा रही है। रात्रि के सांद्र एकांत वातावरण में किसान इन गीतों को गाते रहे हैं।

मल्होर 12 महीने गाए जाने वाले वह पुरुष गीत हैं जिनके माध्यम से जहां सामुहिक रूप में पुरुषों की ज्ञान परीक्षा होती हैं वहीं पर दूसरी ओर उनका मनोरंजन भी होता है।

मल्होर गीत पौराणिक एवं ऐतिहासिक कथाओं पर आधारित पुरुषों के वह गीत हैं जिनमें समकालीन विषयों एवं मन के भावों के अनुसार तोड़–मरोड़ कर प्रस्तुत किया जाता है। ''इस परम्परा में एक पक्ष दूसरे पक्ष की गीतों के सवाल एवं जवाब के माध्यम से आशु परीक्षा लेता है। इन गीतों में श्रृंगारिकता के साथ–साथ हास्यात्मकता एवं मनोरंजनात्मकता का समागम रहता है।''[2]

मल्होर गीतों का लोक सांस्कृतिक मूल्यांकन

लोक सांस्कृतिक दृष्टि से मल्होर गीतों की विशेषता आंचलिकता के अनुसार विविधआयामी सोपानों को अपने अंदर समेटे हुए है। इन गीतों में किसानी संस्कृति का वह स्वरूप देखने को मिलता है जिसके ऊपर अभी शोध होना बाकी है। गीत का विषय केवल महिलाओं के लिए जाना जाता रहा है, किंतु किसानी संस्कृति में अपने मनोरंजन एवं आशु परीक्षाओं के लिए मल्होर गीतों के गाने की परम्परा सदियों से चली आ रही है। सिंचाई के साधनों के माध्यम से इन गीतों को एक विशेष मंच मिला है। ''किसान सामुहिक रूप से जब कूंआं खोदने, कोल्हू चलाने, खेती–बाड़ी के कार्य करने के लिए सामुहिक रूप से जब भी एकत्रित होते थे तभी इन गीतों को आशु परीक्षाओं एवं मनोरंजन के लिए गाने की परम्परा लोक का महत्वपूर्ण हिस्सा रही हैं।''[3] इस विषय पर अभी तक कोई शोध नहीं हुआ है। लोकजीवन में मल्होर गीत के मोती बिखरे हुए पड़े हैं। मल्होर गीतों का लोक सांस्कृतिक अध्ययन प्रस्तुत है।

कोल्हू मल्होर गीत

किसानी संस्कृति में ईख महत्वपूर्ण हिस्सा रहा है। ईख से जुड़ी हुई परम्पराएं लोकजीवन में आज भी किसानी संस्कृति का महत्वपूर्ण हिस्सा हैं। गुड़ एवं शक्कर बनाने की परम्परा, खांड बनाने की परम्परा ईख की नुलाई एवं खुदाई करने की परम्परा, ईख की छिलाई करने की परम्परा सभी सीधा संबंध किसानी संस्कृति से है। ईख पेरते समय कोल्हुओं में मल्हारें भी गाई जाती हैं। रात्रि के सांद्र एकांत किसान की प्रतिभा को पग लग जाते हैं।

चंदा तेरे चांदणै, सुत्ती पिलंग बिछा।
जागूं जिद एकली, मरूं कटारा रवा।। मेरे बावले मल्होर।।
घास जलै ज्यूं खेस जलैं, कुंडे जलै कसार।
घूंघट में गोरी जलै, हीणे पुरुष की नार। मेरी बावली मल्होर।।[4]

एक मल्हौर में जो कुरु प्रदेश में प्रचलित है, प्रतीकात्मक शैली का प्रयोग हुआ है-

अम्बर ऊपर हल चलै, बलद गऊ के पेट।
हाली तो जनमो नहीं, रूटियारी खड़ी खेत। मेरी बावली मल्होर।।

इस शैली को संध्याभाषा नाम भी दिया गया है। उलटवांसी ढंग पर बनी ये मल्होरे बड़ी रहस्यमयी बात कह जाती है। एक दूसरी मल्होर में कोल्हू की क्रियाओं का कैसा सांगोपांग वर्णन आया है–

काला हिरन कोल्हू चलै, गोह गंडीलो देय।
कछवा बैठा गुड़ करै, मेंढक़ झोक्के देयरे। मेरी बावली मल्होर।।[5]

मल्होर गीतों में श्रृगांरिकता

श्रृंगारिकता लोकजीवन का अटूट अंग है। लोक साहित्य एवं संस्कृति में श्रृंगारिकता के विविध आयाम समाहित हैं। लोक में मल्होरों को गा गाकर किसान अपने गीत का भुलाता और मनोरंजन करता है। इन बावले वचनों में कभी–कभी ज्ञान–विज्ञान के तत्व भी भरे रहते हैं। कोल्हू की इन मल्हारों में शृंगार की भी कुछ–कुछ पुट पाई जाती है, जो बिहारी की शृंगारिकता की समकक्षता को पहुंच जाती हैः

नाय नायिका के बाहु मूल दर्शन की इच्छा लेकर कह रहा है।
जल ओड्डे काम्मन खड़ी लाम्बे खेस न्हाय।
रस्ता मन्नै बतायदे, ऊंच्ची करके मांय। मेरे बावले मल्होर।।[6]

एक स्थान पर कृषक-कामिनी ने अपने पति को मक्का की खेती के विरुद्ध सुझाव दिया है। गीत में मक्का की कष्टकर पिसाई का प्रसंग देकर, अंत में, यह आशा व्यक्त की गई है कि सास के पीछे इस दुष्टा से अवश्य मुक्ति मिल जायेगी।

पांच पचास की नाथ घड़ाई, पडग़ी लामनी पहरन न पाई।
सांज ताहीं करी लामनी, सांज पड़े घरां डिगराई, आगे सासड़ लड़ती पाई।
देखा क्यूं ना काम, बखत क्यूं ना आई।
सास मिरी नै सुकी री सुकाई।
ढाई सेर की कुंडी, बखत ऊठ के, आधी पीस के कंथा धोरै आई।
के सोवैहो के जागै नणदी के भाई ?
मुकी मत बोइए हो कलावती के भाई।
डिगगी धरण ठिकाने नहीं आई।
सास मर जागी, नणद घर जागी,
तेरे मेरे राज में मुक्की छुट जागी।

किसानी बैल का मल्होर गीत

बैल और किसान एक–दूसरे के पूरक हैं। किसान अपने बच्चों से भी ज्यादा बैलों से प्यार करता है। बैल को वह अन्नदाता मानता है। इसीलिए लोकजीवन में कहावत भी प्रचलित है कि–गऊ हमारी माता है, बैल हमारा दाता है। किसान का सबसे बड़ा साथी बैल है। बैल ही किसान की शक्ति है। वह उसकी सबसे बड़ी आवश्यकता है पर यह विधि–वामता है कि बुढ़ापे में बैल पर से किसान की कृपादृष्टि उठ गई है। वह विलाप करके कहता है:

अरे न्यूं रोबै बुड्ठा बैल, मन्नै मत बेच्चौ रे पापी।
तेरे कुआ कोल्हू में चात्या, नाज कमा के तेरे घरां घात्या।
इब्ब तन्नै करली से बज्जर की छाती।
तिरा बंज्जड़ खेत मन्नै तोड्या, गाड्डी तै मुह ना मोड्या,
इब्ब मेरी बेच्चौ से मीटी।[7]

बैल के रोदन में करुणा की पुकार है और किसान की निर्दयता की मार्मिक अभिव्यंजना है। उसके भाग्य की बिडम्बना यह है कि उसे बुढ़ापे में भी शांति नहीं मिलती।
गाय भी इसी प्रकार अपनी दुर्दशा पर अजस्र अश्रु वर्षा बहाती है। संसार की कृतघ्नता एवं जघन्य मनोवृत्ति का चित्रण नीचे के गीत में हुआ है:

न्यूं कह रही धौली गाय, मेरी कोई सुणता नाई,
मेरे कितगे सिरी भगवान, मैं दुरूख पाय रही।
मेरा दूध पिवै संसार, घी तै खावै खीचड़ी।
मेरे पूत कमावें नाज, मैंघे भा की रुई।
जब भी मेरे गल पै छुरी।

ऊंट से जुड़े मल्होर गीत

किसानी संस्कृति में बैल के साथ–साथ ऊंट का भी उतना ही महत्व है। खादर के क्षेत्र में जहां बैल रखने की परम्परा रही है वहीं पर रेतीले एवं बागड़ क्षेत्र में ऊंट को रखने की परम्परा रही है। ऊंट के माध्यम से ही किसान धरती की बिजाई करता है। ऊंट से जुड़ी हुई अनेक लोक परम्पराएं हरियाणवी जीवन का महत्वपूर्ण हिस्सा रही हैं। मल्होर गीत भी इससे अछूते नहीं है। यहां पर देखिए एक लोकगीत में ऊंट की कहानी प्रश्नोत्तर रूप में कही गई है:

ताकतवर बलवान बना, क्यूं मुंडी सकल बनाई रे?
के बुझेगा मन मेरे की घणी मुसीबत आई रे।
दई खुदा ने टांग बड़ी जो दो दो गज तक जाती रे।
ऊपर बोझा लदे घणा जब तीन–तीन बल खाती रे।
पेट उमरमा छाती चढमा इडर से सज जाती रे।
लगें रगडके इडर के ना मिलता कोई हिमाती रे।
धन धन तेरे नाती तेरी माता बावल भाई रे।
के बुज्झेगा मन मेरे की घणी मुसीबत आई रे।[8]

आगे चलकर गीत ऊंट की नाक में प्रयुक्त गिरवान (नकेल) और शीतकाल की अनुकूलता के विषय में कहता चलता है, पर ऊंट ने अपनी दुरूखपूर्ण गाथा सुनाने में कसर नहीं की है।

सिंचाई के मल्होर गीत

किसानी संस्कृति में खेतों की सिंचाई करना, उसके लिए कूएं खोदना तथा नहरी पानी का प्रयोग करना लोकजीवन का महत्वपूर्ण हिस्सा रही है। यह परम्परा सदियों से चली आ रही है। सिंचाई करते समय बारा कवि आम के आम, गुठलियों के दाम वाली कहावत चरितार्थ करता जाता है। इससे जाड़ा भी कम लगता है और काम में भी प्रगति होती चलती है। इसी प्रकार ईख पेरते समय कोल्हुओं में रात की सर्दी और नीरवता का अंत करने के लिए किसान की कल्पना अपने पंख फडफ़ड़ाकर काव्य–गगन में उडऩे लगती है। रहस्यवादी कबीर की तरह वह गाने लगता है:

अंबर ऊपर हल चलै, बलध गऊ के पेट।
हाली तो जन्मा नहीं, रुटियारी खड़ी खेत।
रै मेरी बावली मल्होर....

मल्होर गीतों में उलटबांसियां

मल्होर गीत लोकजीवन का हिस्सा हैं। लोक में उल्टी–पुल्टी बात जिज्ञासा एवं ज्ञानवर्धन करने की परम्परा रही है। इन्हीं उल्ट–पुल्ट बातों एवं कविताओं को कबीर ने उल्टबांसी का नाम दिया है। उल्टबांसी के अनेक उदाहरण मल्होर गीतों में देखने को मिलते हैं। उलटवांसी पद्धति पर रचित इन मल्होरों का अर्थ कोई बिरला ही समझ सकता है। इनमें आशय को समझने के लिए ध्वनि का सहारा लेना पड़ता है। रूपक के माध्यम से कोल्हू में होने वाली सभी क्रियाओं का सटीक वर्णन सुनकर श्रोता दाँतों तले अंगुली दबाकर रह जाता है:

काला हिरण कोल्हू चलै, गोह गंनेरी देय।
कछुआ बैठा गुड़ करै, मेंढक झौंक्के देय।
रै मेरी बावली मल्होर..... ।

अद्भुत रस के साथ इन मल्होर गीतों में अध्यात्म और शृंगार के प्रसंग भी बड़े सरस बन पड़े हैं। महाकवि बिहारी के जोड़ की शृंगारिक कल्पना तो देखिए:

जल कांठे कामिनी खड़ी, लांबे केस न्हाय।
रास्ता मन्नैं बताये दे, ऊंची करके बांह।
रै मेरी बावली मल्होर.... ।[9]

मल्होर गीतों में प्रश्नात्मकता

मल्होर गीत जिज्ञासाओं का परिणाम हैं। लोकजीवन में आशु कवि अनेक गीतों को समय एवं परिस्थिति के अनुसार बदल लेते हैं। लोकगीत मल्होर में रसिया पथिक लंबे केशों वाली सद्यरूस्नाता सुंदरी से बांह उठवाकर रास्ता पूछना चाहता है। हे भोली प्रियतमा, देख, यह कह क्या रहा है और चाहता क्या है? इसके शब्दों और उनके आशयों में जमीन–आसमान का फर्क है। यहां ध्यान देने की एक बात और है, मल्होर गीत की सृष्टि दोहे और

गीत दोनों से हुई। रै मेरी बावली मल्होर, यह कड़ी भिन्न–भिन्न दोहों को गीत बारा गीतों में रसिया और धमाल का गान भी चलता है। जिस प्रकार विवाह के गीतों के साथ छन्न और जकडिया़ गाई जाती हैं, उसी प्रकार मल्होर और बारा गीतों में आस्वाद–वैविध्य के अनुसार छंद–वैविध्य भी दृष्टिगोचर होता है। संत साहित्य की उलटबासियों, दोहों और गीतों पर इन लोकगीतों का सीधा प्रभाव देखा जा सकता है। संवादों का सौंदर्य, नाटकीयता और कर्मनिष्ठा का संदेश हरियाणा के लोकगीतों की ऐसी धरोहर है जिसका उपयोग संत कवियों ने प्रचुर मात्रा में किया है। इन्हीं ठेठ आंचलिक संस्कृति के तत्वों से युक्त एक गीत का नमूना प्रस्तुत हैः

तूं तै कित रै गया था भोले़ राम।
मैं तो गया था रै गंगा जी कै न्हाण।
गायें क्यासें ना रै चराईं बाँसली़ बजावता फिरै।
तूं तै भली रै बजाई भोले राम, मैं तो तनैं ढूंढती फिरी।
तनै तै पीया क्यों ना गौवां का दूध, खेला क्यूं ना मूंग की फली़।
तू तै बण्या क्यूं ना जेली़ आला़ जाट, मूंदी क्यों ना खेत की गली़।[10]

बारागीतों में मल्होर

गंगास्नान से भी अधिक पुण्य का काम है अपनी कृषिचर्या, वेणुवादन, गोपालन, खेत की रखवाली तथा खेलकूद में आनंद लेना। कृषि के गीतों और विशेषकर बारा गीतों में जीवन की रसधारा प्रवाहित है। इनमें कथाओं के अंतरूसूत्र मिश्रित होते हैं। जीवन और चिंतन के निखार से परिपूर्ण तत्वदृष्टि, नैतिक और सांस्कृतिक मूल्य–चेतना की प्रखरता, आश्चर्य, विनोद और शृंगारलीला के सुंदर और सरस प्रसंगों से बारा गीतों का कण–कण आर्द्र हो उठा है। ''किंतु कीलिया बारा रै राम मनाइये आदि गीतों में से संगीत, काव्य संपदा और आध्यात्मिक चिंतन के मोतियों को चुनने में हम अभी तक बिल्कुल बेखबर रहे हैं। बारागीतों के साथ धमाल भी गाए जाते हैं। होली के पास तो धमालों की बहार सी आ जाती है। शृंगार और वैराग्य का चित्रण इन धमाल गीतों की विशेषता कही जा सकती है। जीवन का रहस्य मानो इसमें से टपक पड़ता है। जीवन दो दिन का खेल है, यह शरीर भी नश्वर है, यौवन भी ऐसे ही ढल जाता है जैसे पत्तों पर से आंस की बूंदे ढरक जाती है। ऐसी स्थिति में ईश्वर की भक्ति ही तेरा एकमात्र सहारा है।''[11] इसी विचारधारा को लेकर अहीरवाटी में गेय एक धमाल के बोल इस प्रकार हैः

जिदंगानी दिन दो की जहूरो जिंदगानी।
या तेरी जवानी न्यूं ढल़ ज्यागी,
जैसे ढलै़ रै ओस को पाणी...।
जिदंगानी....।
या तेरी काया रै न्यूं जल़ ज्यागी,
जैसे जलै रै झूंड को पाणी....।
जिदंगानी.....।
इस काया की राख बणैगी,
आवे गो बगूलो ये उड़ जाणी....।
जिदंगानी....।
इस काया पै दूब जमैंगी,
आवै मस्तानी गाय चर जाणी....।
जिदंगानी....।

मल्होर गीतों में मनोरंजनात्मकता

इस प्रकार कृषि, सिंचाई में सहायक इन बारा गीतों में शिक्षा और मनोरंजन का मणिकांचन समिश्रण होता है। इनकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इनमें पूरी–पूरी कथाओं को भी समेट लिया जाता है किंतु रामोपासना से ओतप्रोत बारागीतों की विलंबित लय में गेय इन मधुर गीतों की वैचारिक गरिमा, सांस्कृतिक सौरभ तथा कलात्मकता से हम अभी तक बिल्कुल अनभिज्ञ रहे हैं। ग्रामीणों के प्रति हमारी इसी उपेक्षा दृष्टि को लेकर कवींद्र रवींद्रनाथ ने कहा था कि एक दिन ऐसा आएगा जब ग्रामों की रसधारा सूख जाएगी....। लगता है ग्रामों के प्रति हमारी उदासीनता के फलस्वरूप वह दिन अब दूर नहीं है।

पुरुष–तोडूं फोडूं तेरा गूठला, नदी बगाद्यूं हार,
आज की रात याडै डटज्या, तडकै़ लगाद्यूं पार।
मेरे बोले रै मल्होर[12]

कोठे अंदर कोठड़ी, उसकै बीच सुनार,
मेरे घण दे बिच्छुए बाजणे, दमक सुणैगा यार।
मेरे बोले रै मल्होर

चंदा तेरे चांदणै, सुत्ती पिलंग बिछा।
जागूं जिद एकली, मरूं कटारा खा।।
मेरे बावले मल्होर।

घास जलै ज्यूं खेस जलें, कुंडै जलै कसार।
घूंघट में गोरी जलै, हीणो पुरुष की नार।
मेरी बावली मल्होर।

मल्होर गीतों में सामाजिकता

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। इससे जुड़ी हुई घटनाएं लोक का महत्वपूर्ण हिस्सा हैं। हरियाणा प्रदेश में बाल विवाह की कुप्रथा रही है। कई बार युवती पत्नी का बालक होता है। ऐसी पत्नियों को जीवन भर रोना रहता है। उनका यौवन सौंदर्य और शृंगार व्यर्थ ही मुरझा जाता है। ऐसी दशा में किसी नवयुवती सुन्दरी को देखकर यह प्रश्न उठा हैः

कैसे धण ठाढ़ी अनमनी रे,
अर कैसे तिरा मैल्ला भेस।
कै तिरी सास्सू करकसा रे।
ए जी क बाले भरतार। रे मेरी बावली मल्होर।[13]

एक और दृश्य है, जिस प्रकार आरती की कटोरी में घी धीरे–धीरे जलता है और चूल्हे कसार धीरे–धीरे भूनता है उसी प्रकार बालपति की पत्नी अपने घूंघट में जलती रहती है। उसके हृदया–बेग और यौवनतंरग इस विषमावस्था में झुलसते रहते है। मल्होर के बोल हैः

रतन कटोरी धीजलै रे,
बीरा कोई चूल्हे जलै रे कसार।
घूंघट में गोरी जलै,
जाके याणे हों भरतार।
रे मेरी बावली मल्होर.....।

जोबण चाल्य छूट कै होलिया लम्बी राह,
क्यूकर पकडू भाज कै मेरे गौडियां म्है दम नाय,
मेरी बावली मल्हार।[14]

मल्होर गीतों में सामयिकता

मल्होर गीतों में विषय की विविधता समाहित रहती है। प्रातरूकालीन बेला के लिए अलग तथा सांयकालीन बेला के लिए अलग मल्होर होते थे। ''मल्होर गीत जहां पौराणिक एवं

ऐतिहासिक कथाओं पर आधारित होते थे, वहीं पर दूसरी ओर समकालीन विषयों तथा मन के भावों के लिए अनुसार इन्हें तोड़–मरोडक़र प्रस्तुत किया जाता था। आशु कविता के माध्यम से जो व्यक्ति जितना ज्यादा दक्ष होता था, वह उतनी ही सटीक समकालीन प्रांसगिक एवं तुकान्त मल्होर गीत गाया करता था।''[15] इन गीतों में शृंगारिकता के साथ–साथ हास्यात्मक पुट भी देखने को मिलता था। महिला पुरुष को नदी पार करते हुए मल्होर गीत के माध्यम से अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति कुछ इस प्रकार करती है। उदाहरण के लिएः

जोब्बण चाल्या छूट कै होलिया लाम्बी राह,
क्यूंक्कर पकडूं भाजके मेरै गोड्यां मैं दम नाह।
मेरी बावळी मल्होर।।
पुरुष गीत, बौद्धिकता, प्रखरता, सवाल–जवाब।
माळी दाळी के छोकरे, मन्नैं लगा दे नदिया पार।
हाथ का द्यूंगी गूंठला, गल का द्यूंगी हार।
मेरे बोले रै मल्होर।[16]

अम्बर ऊपर हल चलै, बलद गऊ के पेट।
हाली तो जनमो नहीं, रुटियारी खड़ी खेत।
मेरी बावली मल्होर।

काला हिरन कोल्हू चलै, गोह गंडीली देय।
कछवा बैठा गुड़ करै, मेंडक झोक्के देय रे।।
मेरी बावली मल्होर।[17]

जल ओड्डे काम्मन खड़ी लाम्बे खेस न्हाय।
रस्ता मन्नै बतायदे, ऊंच्ची करके मांय।।
मेरी बावले मल्होर।

निष्कर्ष

मल्होर गीत लोक संस्कृति का महत्वपूर्ण हिस्सा रहे हैं। इसकी सांस्कृतिक परम्परा हरियाणवी लोकजीवन का विशिष्ट अंग हैं। लोक में बिखरे हुए इन गीतों को अभी तक लोक सांस्कृतिक दृष्टि से कोई विशेष पहचान नहीं मिली है। इस प्रकार इन गीतों पर अलग से शोध करने की आवश्यकता है ताकि लोक सांस्कृतिक दृष्टि से इसकी महत्ता का मूल्यांकन समझा जा सके। पुरुषों के इन गीतों को समाज में बिखरे हुए मोतियों की संज्ञा दी जा सकती है।

संदर्भ सूची

1. अग्रवाल वासुदेवशरण, पाणिनि–कृत 'अष्टधायी', यू.पी., जुलाई सन् 1640
2. धनकर, रीता 'हरियाणा का लोकसंगीत' राधा पब्लिकेशंज, नई दिल्ली, सन् 1667
3. मलिक, भीमसिंह 'हरियाणा लोक–साहित्य: सांस्कृतिक संदर्भ' पंचकूला, हरियाणा साहित्य अकादमी, सन् 1660
4. वर्मा, हरीशरन 'हरियाणवी संस्कार–गीतों की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि' पंचकूला, हरियाणा साहित्य अकादमी,
5. शर्मा, पूर्णचन्द 'हरियाणवी साहित्य और संस्कृति' चण्डीगढ़, हरियाणा साहित्य अकादमी, सन् 1660
6. सिंह, बलदेव 'हरियाणा: एक सांस्कृतिक अध्ययन' चण्डीगढ़, भाषा विभाग, सन् 1678
7. कौशिक, जयनारायण 'धरा के गीत' चण्डीगढ़, हरियाणा साहित्य अकादमी, सन् 1686
8. डॉ. महासिंह पूनिया, हरियाणा की सांस्कृतिक धरोहर, अक्षरधाम प्रकाशन 2014
9. डॉ. महासिंह पूनिया, लोक साहित्यिक धरोहर, अक्षरधाम प्रकाशन 2०२२
10. डॉ. धमबीर शर्मा, दिल्ली प्रदेश की लोक सांस्कृतिक शब्दावली, राजेश प्रकाशन 1991
11. डॉ. जय नारायण कौशिक, हरियाणवी हिंदी कोश, प्रकाशन हरियाणा साहित्य अकादमी चंडीगढ़ 1985
12. डॉ. महासिंह पूनिया, लोक साहित्यिक धरोहर, अक्षरधाम प्रकाशन 2022
13. देवी शंकर प्रभाकर, हरियाणा एक सांस्कृतिक अध्ययन, उमेश प्रकाशन, नई दिल्ली 1983
14. डॉ. महासिंह पूनिया, हरियाणा की सांस्कृतिक धरोहर, अक्षरधाम प्रकाशन 2014
15. देवी शंकर प्रभाकर, हरियाणा एक सांस्कृतिक अध्ययन, उमेश प्रकाशन, नई दिल्ली 1983
16. डॉ. महासिंह पूनिया, लोक साहित्यिक धरोहर, अक्षरधाम प्रकाशन 2022
17. डॉ. महासिंह पूनिया, हरियाणा की सांस्कृतिक धरोहर, अक्षरधाम प्रकाशन 2014